सम्पादक की कलम से

देश लोकसभा चुनाव के परिणामों पर सारे देश में चर्चा जोरों पर थी इसलिए मुंबई की डाक्टर पायल तड़वी द्वारा आत्महत्या करने की दुखद घटना मिडिया में दब गई। जातीयगत टिप्पणी से परेशान होकर वीवाईएल नायर अस्पताल की रेजीडेंट डाक्टर पायल तड़वी ने आत्महत्या कर ली। पायल के परिवार का आरोप है कि पायल के सीनियर डाक्टरों ने उसके अनुसूचित जनजाति के होने के कारण उसको ताने मारते थे। पुलिस के अनुसार आत्महत्या करने से पहले पायल ने अपनी मां को फोन पर कहा था कि वह अपने तीनों सीनियर डाक्टरों की प्रताडना से परेशान है, अब वह इसे सहन नहीं कर पा रही है। वह सब सिनियर उसे आदिवासी और जातिसूचक शब्दों से बुलाते थे। इसका खुलासा कर दे कि पायल तड़वी ने 22 मई को आत्महत्या कर ली थी। पायल की मां आबिदा ने कहा कि पायल हमारे समुदाय से पहली महिला डाक्टर बनने वाली थीं। उनके लिए बार-बार जातिसूचक शब्दों का भी इस्तेमाल करती थी। उधर महाराष्ट्र एसोसिएशन ऑफ रेजीडेंट डाक्टर्स (एमएआरडी) को लिखे पत्र में तीनों आरोपियों—डॉ. अंकिता खंडेलवाल, डॉ. हेमा आहूजा और डॉ. भक्ति मेहारे ने कहा कि वह चाहते हैं कि कॉलेज इस मामले में निष्पक्ष जांच करे और उन्हें इंसाफ दे। ती नों ने पत्र में कहा कि पुलिस बल और मीडिया के दबाव में जांच करने का यह तरीका नहीं है जिसमें हमारा पक्ष नहीं सुना जा रहा। वहीं एसोसिएशन के एक वरिष्ठ अधिकारी ने कहा कि हमारे पास पुख्ता जानकारी है कि तीनों डाक्टरों ने डॉ. पायल के खिलाफ जातिगत टिप्पणियां कीं। हम इस मामले में आगे की जांच के लिए पुलिस का सहयोग करेंगे। इस मामले में एक आरोपी डाक्टर भक्ति मेहारे को गिरफ्तार कर लिया गया है।

आदिवासी समुदाय से ताल्लुक रखने वाली 26 वर्षिय पायल को आत्महत्या के लिए उकसाने के आरोप में तीन वरिष्ठ साथी डाक्टरों पर केस दर्ज किया गया है। दो अन्य डाक्टर अंकिता खंडेलवाल और हेमा आहूजा ने कोर्ट में अग्रीम जमानत की याचिका दायर की है। आरक्षण से प्रावेश लेने की बात पर पायल के साथ अपमानजनक व्यवहार किया जाता था। यदि यह सच है तो यह स्पष्ट होता है कि जातीय विद्वेष का जहर समाज में किस गहराई तक उतरा हुआ है। वरना कोई कारण नहीं कि विज्ञान की तर्वसंगत शिक्षा लेने वाली और वह भी मेडिकल की पोस्ट ग्रोजुएट में सीनियर लेवल पर पहुंचीं छात्राएं ऐसा घृणित व्यवहार करें। महाराष्ट्र के जलगांव के आदिवासी परिवार की बेटी पायल बुद्धिमान छात्रा थीं और उसे इसने अपनी मेहनत की धार देकर डाक्टर होने का सपना साकार किया। लेकिन बाद की घटनाओं से जाहिर है कि जातिवाद का जहर मन में पालने वाली सहपाठी छात्राओं के लिए उसकी यह तरक्की प्राशंसा की नहीं, ईर्ष्या का कारण बनी। बेशक आरोपियों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई भी होगी लेकिन ऐसी घटनाएं न हों इसके लिए नई पीढ़ी में स्वस्थ मानसिकता का विकास हमारी शिक्षा व्यवस्था और मानसिकता के लिए बड़ी चुनौती है। आज भी जातिवाद हावी है और यह इस केस से साबित होता है। समाज की मानसिकता को बदलना होगा, जो आसान नहीं है।

चहेतों की नियुक्तियों से उठती रहेंगी संवैधानिक संस्थाओं पर उंगलियां

संस्थाओं के सभी सदस्यों और पदाधिकारियों का अपना भी जमीर होता होता है। इससे बढ़कर भी उनका प्रोफेशनल दृष्टिकोण होता है। जबरन किये जाने वाले प्रयास विद्रोह की नौबत लाते हैं। लवासा का लावा यही साबित करता है कि हर किसी को दबाया नहीं जा सकता।

देश की संवैधानिक संस्थाओं में जब तक राजनीतिक आधार पर नियुक्तियां होती रहेंगी तब तक उनकी नेकनियति पर उंगलियां उठती रहेंगी। केंद्रीय चुनाव आयोग में मचे घमासान से अंदाजा लगाया जा सकता है कि देश में संवैधानिक संस्थाओं की नब्ज कैसी चल रही है। लोकसभा चुनाव के मतदान के आखिरी चरण के दिन आयोग के सदस्य अशोक लवासा ने मुख्य चुनाव आयुक्त सुनील अरोड़ा पर मनमानी करने का आरोप लगाकर सनसनी फैला दी। चुनाव आयोग के तौर-तरीकों से उसकी निष्पक्षता और कार्यप्रणाली पर संदेह उत्पन्न हो रहा था। विपक्षी दलों ने चुनाव आयोग पर सीधे केंद्र सरकार के हाथों में खेलने का आरोप लगाया था। तब तक यही माना जाता रहा कि विपक्षी दलों की हर अच्छे काम में भांजी मारने की आदत है। विपक्षी दलों की आदत बन चुकी है कि जहां कहीं भी हार का खतरा नजर आए, वहीं दूसरों पर ठीकरा फोड़ने का प्रयास करते हैं, किन्तु चुनाव आयोग के सदस्य के खुलासे से विपक्षी दलों को केंद्र की मोदी सरकार और भाजपा अध्यक्ष अमित शाह के खिलाफ एक बड़ा हथियार मिल गया है।

राजनीतिक दलों को चुनाव आयोग की नीयत पर संदेह तभी उत्पन्न हो गया था जब समाजवादी पार्टी के नेता आजम खान, बसपा प्रमुख मायावती और यूपी के सीएम योगी आदित्यनाथ पर कुछ घंटों का प्रतिबंध लगाया गया था। सपा-बसपा और कांग्रेस सहित अन्य विपक्षी दलों ने इस मुद्दे पर खूब हायतौबा मचाई पर चुनाव आयोग ने उनकी एक नहीं सुनी। इन दलों ने आयोग पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और अमित शाह के विवादित बयानों पर कार्रवाई नहीं करने का आरोप लगाया। आयोग पर भाजपा के इशारे पर चलने का आरोप भी लगाया गया। ऐसे आरोप कई बार लगाए गए। हालांकि इस पर आयोग ने सफाई भी पेश की। इसके बावजूद आयोग की निष्पक्षता पर संदेह कायम रहा। लग

यही रहा था कि आयोग सभी दलों के नेताओं के मामले में निष्पक्षता नहीं बरत रहा है। इससे पहले गुजरात में विधान सभा चुनाव की घोषणा में देरी करने पर भी आयोग पर सवाल उठे थे। तब भी विपक्षी दलों ने केंद्र सरकार और आयोग की मिलीभगत का आरोप लगाया था। चूंकि प्रधानमंत्री मोदी के राष्ट्री सुरक्षा को चुनावी मुद्दा बनाने से देश के लोगों का मनोविज्ञान बदल दिया, इसीलिए यही लगा कि विपक्षी दल फिजूल में मोदी की घेराबंदी करने में जुटे हुए हैं। यही वजह भी रही कि विपक्षी दलों के आरोपों को गंभीरता से नहीं लिया गया।

यह पहला मौका नहीं है जब संवैधानिक संस्थाओं पर सत्तारूढ़ दल के गुपचुप एजेंडों को लागू करने के आरोप लगे हैं। ऐसे ही हस्तक्षेपों के आरोपों के चलते नीति आयोग से अरविन्द पानगढ़िया रूखसत हो गए। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया में लंबे अर्से तक घमासान चलता रहा। आखिरकार रघुराम राजन को गर्वनर पद से इस्तीफा देना पड़ा। राजन ने केंद्र सरकार पर आरबीआई की स्वायत्ता पर हस्तक्षेप करने का आरोप लगाया। इसके बाद आरबीआई के डिप्टी गर्वनर विरल आचार्य ने भी सरकार पर ऐसे ही आरोप लगाए। सुप्रीम कोर्ट के जजों ने प्रेस कांफ्रेंस करके कोर्ट की स्वतंत्रता को गिरवी रखने के आरोप लगाए थे। हालांकि ये आरोप सीधे केंद्र सरकार पर नहीं लगाए गए किन्तु जजों की नियुक्ति पर केंद्र और सुप्रीम कोर्ट में टकराव जारी रहा। आरबीआई, चुनाव आयोग, सुप्रीम कोर्ट के जजों की नियुक्ति और अन्य ऐसी संवैधानिक संस्थाएं जिनके पास प्रशासनिक या न्यायिक शक्तियां हों, उनसे टकराव होता रहा है।

इन संस्थाओं के फैसलों से सत्तारूढ़ दल प्रभावित होते हैं। जिस भी दल की सरकार केंद्र में रही हो, उसकी कोशिश यही रहती है कि उसके खिलाफ ये संस्थाए ऐसा कुछ नहीं करें, जिससे राजनीतिक नुकसान हो। मतलब सरकार के तमाम फैसलों पर कोई टीका-टिप्पणी नहीं करें। सरकार के हर सही-गलत फैसलों का आंख मूंद कर समर्थन करें। इसीलिए इनमें नियुक्तियां ही चहेते प्रशासनिक अधिकारियों और नेताओं की होती रही हैं। केंद्र सरकार इनमें नियुक्तियों में ऐसे प्रशासनिक अधिकारियों को तरजीह देती रही है, जिनके कार्यकाल के दौरान बड़े नेताओं से अच्छे संबंध रहे हों।

केंद्र सरकार यह भूल गई कि बेशक इन संस्थाओं में नियुक्ति उसी का अधिकार है, पर हर किसी को जड़ खरीद गुलाम नहीं बनाया जा सकता। बेशक उनकी नियुक्ति राजनीतिक आधार पर ही क्यों न होती हो। संस्थाओं के सभी सदस्यों और पदाधिकारियों का अपना भी जमीर होता होता है। इससे बढ़कर भी उनका प्रोफेशनल दृष्टिकोण होता है, जिसे एक हद तक ही बदला जा सकता है। इसके बाद बदलने के प्रयास विद्रोह की नौबत लाते हैं। लवासा का लावा यही साबित करता है कि हर किसी को दबाया नहीं जा सकता। एक ही लाठी से सबको नहीं हांका जा सकता।

आयोग हो या आरबीआई या सुप्रीम कोर्ट, इन सभी में ऐसा ही हुआ है। इन संवैधानिक संस्थाओं के कामकाज और निष्पक्षता पर तब तक उंगलियां उठती रहेंगी जब तक इनमें नियुक्तियों का आधार राजनीतिक बना रहेगा। इनकी स्वायत्ता तभी बचेगी जब संविधान में ऐसे प्रावधान किए जाएं कि ऐसी संस्थाओं में नियुक्ति पाने वाले की निष्ठा पर संदेह ना हो। नौकरशाहों और नेताओं के बजाए साफ-सुथरी छवि वाले अन्य वर्गों से लोगों की नियुक्तियां हों। अन्यथा ऐसी संस्थाओं की स्वायत्ता से मनमानी का खिलवाड़ जारी रहेगा। ऐसी स्थिति में देश के लोकतंत्र की परिपक्वता को कमजोर करेगी।